यीशु का शारीरिक पहलू

यीशु को मानवीय जीव के रूप में देखने पर हम उसे अपने में से एक के रूप में विचारते हैं। मानवीय होने का अर्थ क्या है ? इस युग में इस प्रश्न के उत्तर का क्षेत्र बहुत ही विशाल है। इसलिए हम बड़ी सावधानी से आगे इस पर विचार करेंगे। अपनी गाइड के रूप में बाइबल का इस्तेमाल करते हुए, हम पृष्ठ 138 के चार्ट का हवाला देंगे ताकि अपने प्रश्न की सीमा हमारे ध्यान में रहे।

आधुनिक समय में विकसित सामाजिक विज्ञान, विशेषत: मनोविज्ञान अन्तत: व्यक्तिवाद की पूर्णतावादी धारणा तक पहुंच गया है जिसकी झलक बाइबल में भी मिलती है। मानवीय जीवों के रूप में हमारी बहुवादी तस्वीर आदर्श इब्रानी शब्द *nephesh* से विस्तृत रूप से दिखाई गई है। यह शब्द इतना व्यापक है कि अंग्रेज़ी के NIV संस्करण में इसका अनुवाद 150 से अधिक तरह से किया गया है।[1] यह यूनानी दर्शन में पाए जाने वाले प्राचीन द्वैतवादी विचार से बिल्कुल विपरीत है। चार्ट में सुझाया गया व्यापक विचार ही है जिसका यीशु के मानवीय जीवन समेत, मानवीय जीवों का अध्ययन करते समय हम ध्यान रखेंगे।

यीशु का शरीर

यीशु मानवीय देह में संसार में आया। उसका प्रकट होना चौंकाने वाला नहीं था। उसमें वे सभी शारीरिक गुण थे जो किसी स्वस्थ बालक में होने की अपेक्षा की जाती है। उसके जन्म की अपेक्षा, दूसरे बच्चों के जन्म की तरह ही गर्भ के लगभग 9 माह बाद की गई थी। उसे प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करके उसका पालन-पोषण किया गया था। जन्म के बाद आठवें दिन उसका खतना किया गया था और उसका नाम यीशु रखा गया था। समय बीतने के साथ-साथ उसकी मानवीय देह भी मजबूत होती गई। उसका कद बढ़ा। वह एक समझदार, पूर्णविकसित व्यक्ति के रूप में बड़ा हुआ। लगभग तीस वर्ष की आयु में यीशु ने अपने सम्बन्धी यूहन्ना के पास यरदन नदी में बपतिस्मा लेने के लिए अपनी देह सौंप दी (लूका 2:4-7, 21, 40, 51, 52; 3:23; मत्ती 3:13-15)।

अपनी व्यक्तिगत सेवकाई के दौरान, यीशु ने दिखाया कि उसकी देह पर उन सभी बातों का असर होता था जिनसे हम सब के शरीर होते हैं। उसे थकावट होती थी और प्यास भी लगती थी। स्पष्टत:, यीशु अधिकतर स्थानों पर पैदल गया था। एक ऐसी ही यात्रा में वह

थक गया था और उसने पानी पीना चाहा था। यह दोपहर का समय था जब वह सामरिया में सूखार नामक गांव में याकूब के कुएं पर आया था। वह आराम करने और पानी पीने के लिए वहां रुक गया था। इसी बीच गांव की एक स्त्री पानी भरने आई। सामरी लोग जानते थे कि यहूदी उन्हें अशुद्ध मानते हैं, इसलिए यीशु के यह कहने पर कि ''मुझे पानी पिला'' (यूहन्ना 4:7) वह हैरान रह गई।

यद्यपि केवल यूहन्ना में ही इस घटना का उल्लेख है, परन्तु यीशु के जीवन की यह घटना उस स्त्री और गांव के सामरियों में यीशु के अद्‌भुत उपदेश के कारण प्रसिद्ध है। हम सामरियों के साथ खड़े होकर इस व्यक्ति को सुनते हैं जो उनके पास थका और प्यासा आया था और उन्हें इस प्रकार से सिखा रहा है कि हम उसे एक भविष्यवक्ता या शायद मसायाह के रूप में देखने लगते हैं तो पूरा प्रकरण और भी आनन्ददायक बन जाता है। हम पर यह उजाला होता है कि उसके नाम, *येशुआ* (यीशु के लिए इब्रानी भाषा का शब्द = उद्धारकर्त्ता) का हमारे लिए कुछ प्राचीन समय में इब्रानी लोगों के लिए *यहोशुआ* (यहोशू के लिए इब्रानी शब्द = परमेश्वर बचाता है) के अर्थ की तरह ही (यूहन्ना 4:4-42) शानदार अर्थ है।

मानवीय परिवार के सदस्यों में दो अप्रिय समानताएं कष्ट और मृत्यु हैं। परमेश्वर के परिवार अर्थात कलीसिया के सदस्यों के रूप में, हमें आश्वस्त किया जाता है कि यदि हम विश्वासी हैं तो हमें कष्ट सहना पड़ेगा। इसके साथ ही, हमें यह भी बताया जाता है कि मृत्यु से हमारा सामना केवल उसी स्थिति में नहीं हो सकता है यदि प्रभु पहले आ जाए (इब्रानियों 9:27)।

जब हम परमेश्वर के वचन को पढ़ते हैं, तो हमें पता चलता है कि इन दो अनुभवों से यीशु को छूट नहीं थी। ध्यान से पढ़ने पर पता चलता है कि मनुष्य जाति के इन दो चिह्नों का अनुभव करने वाले सब लोगों के आगे वह खड़ा है। शारीरिक रूप से कहें, तो गतसमनी के बाग में उसका कष्ट इतना अधिक था कि उसके शरीर का पसीना भूमि पर लहू की बूंदें बनकर गिर रहा था। कितने कष्ट में था वह! (देखिए 1 पतरस 4:12-16; लूका 22:44)।

निश्चय ही क्रूस पर यीशु की मृत्यु मानवीय इतिहास का एक बड़ा जल विभाजक है। बाद में पुनरुत्थान के साथ यह एक निर्णायक घटना है जिस पर हमारा भविष्य आधारित है। हम ईस्वी पूर्व तथा ईस्वी सन में समय को बांटकर क्रूस के महत्व को स्वीकार करते हैं। यह इस घटना के पहले और बाद की सभी घटनाओं को एक ओर करके समय के सभी युगों को अपने में समेट लेता है। क्रूस पर यीशु की मृत्यु उसके मनुष्य होने का सबसे चौंकाने वाला प्रमाण है। उसके मरने के बाद, उसकी मृत देह को क्रूस से उतार लिया गया था, जल्दी से गाड़ने के लिए तैयार किया गया था और कब्र में रख दिया गया था (मत्ती 27:50; यूहन्ना 19:28, 30; लूका 23:46, 50-53)।

यीशु की भावनाएं

यीशु ने जो भावनाएं व्यक्त कीं उनसे हम सम्बन्ध बना सकते हैं। क्योंकि हम मनुष्य हैं और वह भी मनुष्य था, इसलिए भावनाओं के साथ मनुष्य के इस सम्बन्ध से हमें हैरानी नहीं

होती है। यदि वह मनुष्य न होता तो हमें हैरानी भी न होती। परन्तु उसकी ईश्वरीयता की किसी विशेष शिक्षा या उदाहरण की खोज करते हुए उसके मनुष्य होने के इन प्रमाणों को पढ़ना आसान है। आइए मनुष्य के रूप में यीशु के भावनात्मक भावों के उदाहरणों पर विचार करें। इससे हम उसके और निकट आएंगे।

उसका प्रेम

पहले हम प्रेम की ओर ध्यान देते हैं क्योंकि यह पहले है/निष्कपट प्रेम मानवीय आत्मा की सबसे बड़ी अभिव्यक्ति है क्योंकि यह दिखाता है कि मनुष्य एक ऐसा जीव है जिसे उस परमेश्वर के स्वरूप में बनाया गया है, जो प्रेम है। प्रेम करने की हमारी योग्यता की सबसे गहरी अभिव्यक्ति हमें परमेश्वर द्वारा सृजित जीवन के रूपों में सबसे ऊपर रखती है। इस योग्यता के न होने पर, हम पूर्णतया मनुष्य न होते।

एक अवसर पर कोई धनी व्यक्ति यीशु के पास अनन्त जीवन से जुड़े कुछ प्रश्न लेकर आया था। क्योंकि यीशु यही कुछ देने के लिए आया था इसलिए हम एक दम से बात करने के लिए आए उस व्यक्ति की स्वेच्छा की प्रशन्सा कर सकते हैं। प्रकाशमय करने वाली इस सारी बातचीत की मुख्य बात इस कथन में पाई जाती है ''यीशु ने उस पर दृष्टि करके उससे प्रेम किया'' (मरकुस 10:21क; 1 यूहन्ना 4:8; यूहन्ना 11:5 भी देखिए)।

गलील की अपनी सेवकाई के दौरान यीशु ने बारह लोगों को अपने प्रेरितों के रूप में चुना था। उसी समय से, इन लोगों की शिक्षा और दीक्षा उसके काम का महत्वपूर्ण भाग बन गए थे। यह एक चुनौतीपूर्ण प्रक्रिया थी। उन्हें सिखाने, अनुशासित करने, ज्ञान देने और डांटने में उसने उनके साथ अद्‌भुत धैर्य दिखाया था। ''समयसारणी'' के अन्त के निकट वह अपने काम में लगा हुआ था, पवित्र शास्त्र हमें मात्र एक कारण बताता है जिससे वह उन ग्यारह के जीवनों को मोड़ने में सफल रहा ताकि वे शहीद होकर भी उद्धार के संदेश का प्रचार कर सकें। यूहन्ना ने यीशु के लिए लिखा है, उस स्मरणीय अन्तिम फसह का पर्व निकट आने पर ''जो प्रेम वह जगत में रहने वाले अपने लोगों से रखता था, वह प्रेम अब उसने उन पर पूरी तरह से दिखाया'' (यूहन्ना 13:1ख; NIV)। पूरी तरह से प्रेम दिखाने का क्या अर्थ है? हमने पहले गतसमनी के बाग में यीशु के कष्ट और क्रूस पर उसकी मृत्यु की बात की थी। उसका कष्ट सहना प्रेम को दिखाने के लिए था। यह उसके प्रेम का प्रगटावा भी था जिसने ''जगत से *ऐसा* प्रेम रखा कि उस ने अपना एकलौता पुत्र दे दिया ...'' (यूहन्ना 3:16)। यीशु की मृत्यु ने ''उसका वह प्रेम उन्हें पूरी तरह से दिखाया।'' क्रूस पर यीशु की मृत्यु मानवीय प्रेम की सबसे बड़ी अभिव्यक्ति थी, क्योंकि परमेश्वर पिता के प्रेम का यह सम्पूर्ण नमूना था।

सम्पूर्ण प्रेम होने पर आनन्द करने का हर कारण होता है। यीशु ने प्रेम तथा आनन्द दोनों की बात की थी। चुने हुए प्रेरितों से उसने कहा, ''मैं ने ये बातें तुम से इसलिए कही हैं, कि *मेरा आनन्द* तुम में बना रहे, और *तुम्हारा आनन्द* पूरा हो जाए। मेरी आज्ञा यह है, कि जैसे मैं ने तुम से प्रेम रखा, वैसा ही तुम भी एक दूसरे से प्रेम रखो'' (यूहन्ना 15:9-12)।

हमारे मानवीय संघटक

(व्यवस्था. 6:4, 5; लैव्य. 19:10ख; मर. 12:29-31)

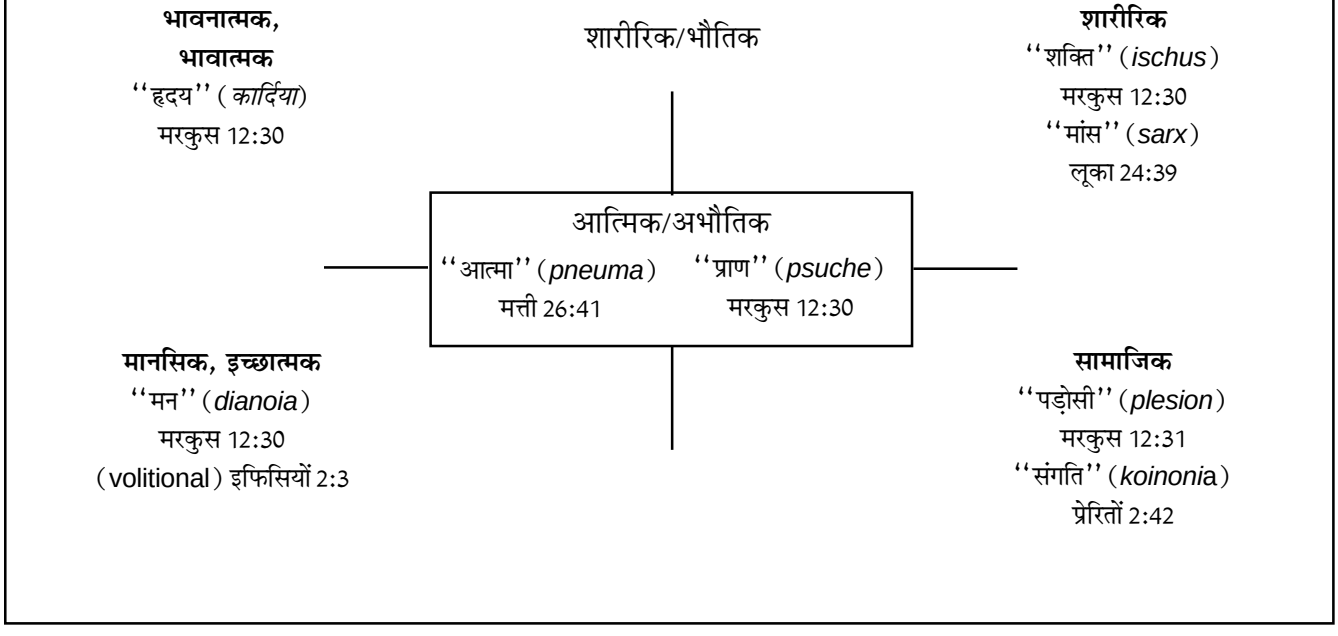

यीशु ने अपने जीवन में प्रेम तथा आनन्द को व्यक्त किया। उसने इससे भी बढ़कर किया। उसने प्रेम तथा आनन्द को उनका अर्थ दिया।

उसकी दया

दया एक ऐसा मानवीय गुण है जिसे सबसे अधिक प्रिय माना जाता है। यह हमारे अपने बाहर अपनी इन्सानियत को दिखाने की हमारी योग्यता का एक चिह्न है। मधुर सम्बन्ध बढ़ाने में दया ईंट-पत्थरों का काम करती है। यीशु ने हमारे जीवनों में दया की निर्णायक भूमिका पर और उसकी सेवा के लिए यह हमारे बारे में कितना कहती है, बहुत ज़ोर दिया था। उसने भूखे को भोजन खिलाने, प्यासे को पानी पिलाने, परदेशियों के प्रति दया दिखाने, नंगों के लिए कपड़े उपलब्ध कराने और कैदियों से मिलने जाने पर बात की। यीशु ने कहा कि ऐसे काम उसकी ही सेवा माने जाएंगे। दूसरी ओर, यीशु ने कहा कि कठोर मन वाले लोगों का अन्त बुरा होगा (मत्ती 25:34-46)।

दया यीशु की व्यक्तिगत सेवकाई का एक प्रमाण चिह्न था। उसने एक कोढ़ी व्यक्ति की ओर देखकर उस पर तरस खाया। उसने लोगों की भीड़ की ओर देखा जिसमें बहुत से बीमार लोग थे और उसे उन पर तरस आ गया। उसने व्याकुल, असहाय, और भटकते लोगों की भीड़ को देखा और उसे उन पर भी तरस आ गया। बिना दया के उसकी सेवकाई की कल्पना करना कठिन होगा।

दया की परिभाषा ''दूसरों की व्यक्तिगत त्रासदी और इसके प्रति नि:स्वार्थ कोमलता के आत्मिक बोध'' के रूप में की जाती है। कभी आप सड़क के किनारे खड़े कीचड़ से लथपथ किसी व्यक्ति के पास गए हैं जिसने हाथ में एक गत्ता पकड़ा हो जिस पर लिखा हो ''खाने के लिए काम करूंगा''? टेलीविज़न के समाचारों पर किसी मूर्छित मां को खून से लथपथ अपने मरे हुए बच्चे को जिसे *अमानवीय* विवेकहीन युद्ध में मार डाला गया था, देखकर हम ''करुणा से भर जाते हैं।'' दुखी लोगों के लिए हम ''दुखी होते'' हैं क्योंकि हम इन्सान हैं। यीशु में भी यही भावनाएं थीं, बल्कि वह तो इनसे भी आगे बढ़कर था। उसने ऐसी भावनाओं को बहुत ऊपर उठा दिया। उसने दूसरों के दुख व कष्ट को कम किया। उसकी इन्सानियत ही उसके मनुष्य होने के बारे में स्वयं बोलती था (मरकुस 1:40, 41; 6:34; मत्ती 9:36; 14:14)।

उसका क्रोध

इसके बिल्कुल विपरीत दया के साथ-साथ यीशु का क्रोध भी देखा जाता है। उसका क्रोध उनके प्रति नहीं था जिन्होंने उसे पहचाना नहीं, अपमानित किया या घाव दिए थे। उसका क्रोध तो उन लोगों के प्रति था जिनके मन दया से इतने खाली थे कि जब उन्हें लगा कि वह एक धार्मिक व्यवस्था का उल्लंघन कर रहा था तो उसके किसी अपाहिज की सहायता करने को वे सहन नहीं कर पाए थे। उदाहरण के लिए, सब्त के दिन जब वह एक आराधनालय में था, तो उसका ध्यान सूखे हाथ वाले एक आदमी की ओर गया। यीशु ने उस

आदमी को लोगों के सामने खड़ा होने को कहा। उसके चंगा होने के बाद उसने उन से पूछा, क्या सब्त के दिन किसी को चंगा करना बुरी बात है। जब उन्होंने उत्तर देने से इन्कार कर दिया तो उसने ''उनके मन की कठोरता से उदास होकर, उनको क्रोध से ...'' देखा (मरकुस 3:1-6)। वह उन लोगों पर क्रोध करता था जो अपनी धार्मिक मान्यता के कारण दया के लिए कोई स्थान नहीं रहने देते थे। वे गलत थे। वह सही था। उनके मन कठोर थे। उसके मन में दया थी।

उसकी जिज्ञासा

यीशु की सच्ची इन्सानियत के लिए सबसे निर्णायक प्रमाण उसकी जिज्ञासा में मिलता है। हम इस बात से इन्कार करते हैं कि यीशु का मनुष्य होना ''अव्यैक्तिक'' था; अर्थात यह कि वह व्यक्तिगत नहीं बल्कि सैद्धांतिक था। यह तर्क देने वाले यीशु के जीवन में निहित जिज्ञासा जैसी बातों से परेशान लगते हैं। निश्चय ही सब लोग इस बात से परेशान होंगे कि सचमुच मनुष्य बनने का अर्थ अपने आपको सीमित करना है। यीशु को इस गुण से वंचित करने का अर्थ उसकी सच्ची इन्सानियत से इन्कार करना या उसे सीमित करना है।

जिज्ञासा जीवन भर चलती रहती है। ''दोपहर के भोजन में क्या है?'' जिज्ञासा का एक अनियत रूप है। ''जीवन क्या है?'' एक गहरा प्रश्न है। लगता है कि जिन बातों को हम ''बिना महत्व के वर्णन'' कह सकते हैं उनके बारे में यीशु की जिज्ञासा को लिखना सुसमाचार के लेखकों द्वारा हमें स्मरण दिलाने के लिए एक सचेत प्रयास है कि वह *सचमुच* मनुष्य था।

एक अवसर पर, यीशु ने पांच हज़ार पुरुषों को जिनके साथ महिलाएं व बच्चे भी थे, भोजन खिलाया था। उन्हें भोजन खिलाने से पहले उसने पूछा था ''जाकर देखो, तुम्हारे पास कितनी रोटियां हैं?'' (देखिए मरकुस 6:35-38)। उसने यह प्रश्न क्यों पूछा था? क्या वह प्रेरितों को प्रभावित करना चाहता था? यदि ऐसा होता, तो वह उनसे यह कह सकता था, ''भीड़ में जाओ, और तुम्हें पांच रोटियां और दो मछलियां मिलेंगी। उन्हें मेरे पास ले आओ।'' क्या यह भीड़ को प्रभावित करने के लिए था? ऐसा कोई संकेत नहीं है कि भीड़ ने चेलों से किया यीशु का यह प्रश्न सुना हो। उसने यह प्रश्न क्यों किया था? वह एक इन्सान था। लेखक जिसका ''मानवीकरण'' करने का यत्न कर रहा था उसका ''आत्मीकरण'' क्यों किया जाए?

यीशु के होंठों से निकले सबसे स्तब्ध करने वालों प्रश्नों में से एक, मरथा और लाज़र की बहन मरियम को सम्बोधन था। लाज़र मर गया था और उसे गाड़ दिया गया था। यीशु को जो उस समय घर से दूर बैतनिय्याह में था, लाज़र के मरने से पहले उसके बीमार होने का समाचार दिया गया था। उसके बीमार होने का पता चलने के बाद यीशु और दो दिन तक वहां ठहरा रहा था। फिर उसने अपने चेलों को बताया था कि लाज़र मर गया है। वे सभी बैतनिय्याह को लौट गए। अपने घर यीशु के पहुंचने से पहले ही, मरथा उससे मिलने के लिए भाग गई और उससे मिली थी। फिर वह मरियम के पास गई और उसे बताया था कि

यीशु आ गया है और उससे मिलना चाहता है। जब यीशु ने उसके और उसके साथ दूसरे लोगों के दुख को देखा, तो उसका मन भर आया। फिर उसने पूछा था, ''तुमने उसे कहां रखा है'' (यूहन्ना 11:33)। जब वह कब्र पर आया तो हमें बताया गया है कि ''यीशु रोया'' (यूहन्ना 11:34)। कितनी दया है उसमें! कितना प्रेम है! कितनी सहानुभूति है! कितनी इन्सानियत है! इस पद के बारे में कहा गया है कि ''सुसमाचार प्रचारक उस [यीशु] के दुख को सुसमाचार की सभी पुस्तकों में पाए जाने वाले उसके मानवीय स्वभाव की कोमलता, 'यीशु रोया' में दिखाता है।'' इसके लिए हम ''आमीन'' कह सकते हैं! परन्तु इस बहुमूल्य पद में उसके मनुष्य होने के शानदार संकेतों में से एक उसका अबोध बालक की तरह यह पूछना है ''तुमने उसे कहां रखा है ?'' (यूहन्ना 11:1-36)।

यीशु ने दिखाया कि देह में वह वास्तव में एक मनुष्य था जिसकी भावनाओं में यीशु की मानवीयता के बारे में कुछ भी ''अव्यैक्तिक'' नहीं था। उसकी इन्सानियत दिखावटी नहीं थी। यह उतनी ही वास्तविक और सच्ची थी, जितनी उसकी ईश्वरीयता।

पाद टिप्पणियां

[1]एडवर्ड डब्ल्यू. गुडरिक और जॉन आर. कोहेलिन्नबरगर III, सं. द *NIV एग्ज़ास्टिव कंकॉर्डेन्स* (ग्रैंड रैपिड्स, मिशी.: ज़ॉन्डर्वन, 1990), 1546-47.